International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 19-04-2026, Accepted: 20-05-2026, Published: 04-06-2026
Volume 12, Issue 2, 2026, Page No. 159-161

विकास का मिथक और जन–विस्थापन व शोषण का यथार्थः 'डूब' उपन्यास के संदर्भ में

जीतबाला
सहायक प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, गुरु गोरखनाथ जी राजकीय महाविद्यालय हिसार, हरियाणा, भारत
DOI: https://doi.org/10.66856/ijhr.2026.12.2.12154

सारांश
कृषक जीवन की त्रासदी, महानगरीय जीवन की जटिलताओं व औद्योगीकरण और बड़ी – बड़ी परियोजनाओं के कारण विकास के स्थान पर जन –विस्थापन व शोषण जैसे सामाजिक यथार्थों को चित्रित करने वाले समकालीन उपन्यासकारों में वीरेंद्र जैन का नाम बड़ी प्रमुखता से लिया जाता है। उनका उपन्यास श्डूबश भी विकास के सब्जबाग दिखाकर विस्थापित व शोषित किए गए ग्रामीणों की व्यथा का जीवंत दस्तावेज है, जिसमें लड़ैई गाँव में बनाए गए बांध के प्रभावों को संवेदनशील तरीके से चित्रित किया गया है। उपन्यास में दर्शाया गया है कि विकास परियोजनाओं की आड़ में कुछ पूंजीपतियों व सरकार के लाभ के लिए ग्रामीणों की उपजाऊ जमीन का अधिग्रहण कम मूल्य पर किया जाता है व निर्धारित मूल्य में से भी भ्रष्ट नौकरशाही हड़पने का प्रयास करती है। आजीविका का साधन (जमीन) समाप्त होने के कारण ग्रामीण अपना गाँव त्याग कर दूसरे स्थान पर जाने के लिए मजबूर हो जाते हैं। यह विस्थापन केवल भौगोलिक विस्थापन नहीं है बल्कि अपनी संस्कृति, परंपराओं, सामाजिक संबंधों व अस्तित्व पहचान से भी विस्थापित होना है। विकास के नाम पर किया जाने वाला यह जन –विस्थापन व शोषण एक अदृश्य अन्याय है। विकास के लिए आवश्यक बताए जाने वाली परियोजना ग्रामीणों के अस्तित्व विनाश व शोषण का कारण बन जाती है।

मूल शब्दः विकास, पूंजीपति, विस्थापन, संस्कृति, सामान्य जन, शोषण

मानव सभ्यता के विकास के साथ–साथ विकास की परिभाषा भी निरंतर परिवर्तित होती रहती है। पूर्व में मानव जीवन के लिए अनिवार्य आधारभूत आवश्यकताओं की पूर्ति को ही विकास माना जाता था जबकि आधुनिक युग में आर्थिक और तकनीकी उन्नति विकास के पर्याय बन चुके हैं। वर्तमान में विकास का अर्थ बड़े –बड़े बांधों का निर्माण, उद्योगों का निर्माण, बहुराष्ट्रीय कंपनियों की स्थापना व नगरीकरण है परंतु आधुनिक काल की इस विकास की चकाचौंध में अदृश्य मानवीय त्रासदियों जैसे पर्यावरण विनाश, सांस्कृतिक लुप्तता व जन–विस्थापन जैसे भयावह यथार्थ भी छिपे हुए हैं। किसी भी क्षेत्र में जब कोई बड़ी विकास परियोजना आरंभ की जाती है तो इसका प्रभाव उस क्षेत्र विशेष के ग्रामीणों विशेषकर मजदूरों और किसानों पर पड़ता है। इस प्रकार की परियोजनाओं के लिए उनकी भूमि का अधिग्रहण होने के कारण उनकी आजीविका का साधन उनसे छिन जाता है और इस कारण उन्हें अपने पैतृक स्थान से विस्थापित होना पड़ता है। व्यक्ति का अपने समाज, संस्कृति व परंपराओं से भी जुड़ाव समाप्त हो जाता है व समाज में विकास के नाम पर शोषण, विस्थापन और भ्रष्टाचार जैसी न जाने कितनी समस्याओं का जन्म हो जाता है। प्रस्तुत शोध का उद्देश्य यह स्पष्ट करना है कि आधुनिक समय में प्रचलित विकास की यह अवधारणा पूंजीपति व सरकार केंद्रित है, साधारणज केंद्रित नहीं। यह अवधारणा सामान्य जन को सांस्कृतिक व सामाजिक दोनों स्तरों पर प्रभावित करती है। विकास के नाम पर सभी संस्थानों पर पूंजीपतियों का अधिकार स्थापित करती है।

साहित्य को मानव की व्याख्या कहा जाता है। इसका वास्तविक उद्देश्य मानव जीवन के यथार्थ व जटिलताओं को उजागर करना होता है। साहित्य की रचना केवल मनोरंजन के लिए की जाए तो साहित्य के वास्तविक लक्ष्य की प्राप्ति नहीं होगी। "साहित्यकार का लक्ष्य केवल महफिल सजाना और मनोरंजन का सामान जुटाना नहीं है, उसका दर्जा इतना न गिराइये। वह देशभक्ति और राजनीति के पीछे चलने वाली सच्चाई भी नहीं है, बल्कि उनके आगे मशाल दिखाती हुई चलने वाली सच्चाई है।"[1] साहित्य किसी भी समाज का पथप्रदर्शक होता है जो जीवन की वास्तविकताओं को उभारता है व संघर्ष के लिए प्रेरित करता है। साहित्य के इसी उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए प्रेमचंद जी ने कहा है–"हमारी कसौटी पर वही साहित्य खरा उतरेगा जिसमें उच्च चिंतन हो, स्वाधीनता का भाव हो, सौंदर्य का सार हो, सृजन की आत्मा हो, जीवन की सच्चाईयों का प्रकाश हो जो हममें गति, संघर्ष और बेचौनी पैदा करे, सुलाये नहीं।"[2] अतः साहित्य देश या समाज का मार्ग प्रशस्तक होता है जो समाज के यथार्थ को सबके समक्ष प्रस्तुत करने का कार्य करता है।

विकास की अवधारणा

राष्ट्र या समाज के नागरिकों का सुरक्षित व सम्मानजनक जीवन, समृद्ध संस्कृति, समानता, (सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक) आदि वास्तविक विकास के आयाम हैं परंतु आधुनिक युग में वैज्ञानिक, तकनीकी उन्नति व आर्थिक समृद्धि को ही विकास माना जाने लगा है जिसमें उत्पादन और आर्थिक लाभ को ही महत्व दिया जाता है। मजदूरों व किसानों के शोषण, पर्यावरणीय विनाश, सांस्कृतिक विनाश व जन–विस्थापन जैसी समस्याओं को गौण मान लिया जाता है। इस संकुचित अवधारणा का परिणाम यह होता है कि समाज के साधारण लोगों का जीवन संकटग्रस्त हो जाता है। उनके प्रगति के अवसर धीरे धीरे समाप्त हो जाते हैं जैसे 'डूब' उपन्यास में दर्शाया गया है, गोराबाई अपने बेटे को शिक्षित करना चाहती है परंतु सरकार द्वारा स्कूल अन्य स्थान पर विस्थापित करने के कारण वह अपने बेटे को शिक्षित करने में असमर्थ महसूस करती है।" इधर रामदुलारे मदरसा जाने की उम्र को पहुंचा, उधर मदरसा ही उठा लिया सरकार ने। उसकी पहुंच से दूर कर दिया मदरसा। नन्हें –नन्हें पांव का धनी रामदुलारे इस दूरी को नापेगा कैसे ?"[3]

जन–विस्थापन का अर्थ

जन–विस्थापन का अर्थ है –किसी व्यक्ति, परिवार या समुदाय को उसके पैतृक निवास स्थान व जमीन से बलपूर्वक अलग करना। यह विस्थापन केवल भौगोलिक विस्थापन नहीं होता है। इससे व्यक्ति अपनी परंपराओं, रीति रिवाजों व संस्कृति से भी विस्थापित

हो जाता है। यद्यपि यह विस्थापन किसी प्राकृतिक आपदा या व्यक्ति, परिवार या समुदाय की स्वेच्छा से भी हो सकता है, (अच्छी शिक्षा या रोजगार प्राप्त करने के लिए) परंतु जब यह विस्थापन सरकार या पूंजीपतियों द्वारा किए गए उद्योग निर्माण, बांध, निर्माण व शहरी विस्तार जैसी योजनाओं के कारण होता है तो यह अत्यधिक पीड़ादायक होता है और व्यक्ति को मानसिक रूप से भी प्रभावित करता है। व्यक्ति या समुदाय की संस्कृति व सामाजिक पहचान भी लुप्त हो जाती है। श्डूबश उपन्यास में यह त्रासदी अत्यधिक मार्मिक रूप में चित्रित हुई है।

विकास बनाम जन विस्थापन व शोषण:

'डूब' उपन्यास का मूल उद्देश्य विकास और जन–विस्थापन व शोषण के अंतर्विरोध को उजागर करना है। बांध निर्माण कार्य को साधारण जन व देश हित में बताकर इनका निर्माण किया जाता है और इसके लिए जमीन ली जाती है किसानों की। सरकार या उद्योगपतियों को जब भी किसी परियोजना के लिए भूमि की आवश्यकता होती है तो केवल किसानों की भूमि को प्राप्त करना ही उनका एकमात्र लक्ष्य होता है। उसी पर उन्हें अपनी परियोजनाओं को स्थापित करना होता है। "सरकार को बबीना में मिलिट्री कैंट कायम करना हुआ, कि सागर के मिलिट्री कैंट को विस्तार देना हुआ, कि राजघाट बांध, जामिनी घाट बांध, कि माताटीला बांध, कि तालबेहट बांध कि फलां योजना, कि ढिंका योजना बनानी लाजिमी हुई, कि सड़कें चौड़ी करनी हुई, कि रेल पटरी बिछानी हुई इन सबके लिए जमीन की दरकार। जमीन लेनी हुई किसानों से गांव वालों से।"[4] बांध निर्माण हेतु ग्रामीणों की खेतिहर जमीन को लेने के लिए बांधों के निर्माण से होने वाले न जाने कितने लाभ बताकर व अच्छे जीवन के सपने दिखाकर लोगों को आकर्षित किया जाता है। 'डूब' उपन्यास में बांध निर्माण के लाभ बताते हुए कहा गया कि" जहां से पहले चंदेई और लतपुर जाने के लिए मोटर मिलती थी, वहां पर एक बड़ा–सा मिट्टी–गारे का बांध बनवाया जाए। जब वह बांध बनकर तैयार हो जाएगा तो उससे हमारे इलाके को भरपूर बिजली मिलेगी। नए ढंग से खेती हो सकेगी, जैसी विलायत में होती है। यहां के चंदेरी, मुंगावली, गुना और उत्तर प्रदेश के ललितपुर कस्बे में नए नए कारखाने खुलेंगे। अच्छे मदरसे खुलेंगे, ऊंची तालीम मिलेगी और इस तालीम को हासिल करके हमारे तुम्हारे बच्चे यही नौकरी–रोजगार पा जाएंगे।"[5] परन्तु वास्तविकता इसे कोसों दूर होती है जो कि बांध निर्माण के बाद पता चलती है। इस प्रकार की परियोजनाओं के लिए जब किसान अपनी जमीन बेचना भी नहीं चाहते हैं, तब भी उनकी जमीनों को उनकी इच्छा के विरुद्ध या फिर कानून का भय दिखाकर उनकी जमीनें हड़प ली जाती हैं।" यह कहां का न्याय है! यह कैसी उल्टी रीति चलाई है सरकार ने ! औने–पौने दाम लगाकर, कानून का भय दिखाकर हमसे हमरी जमीन हड़पी, हमें बिना बताए, बिना हमसे सलाह किए, बिना हमारी मंशा जानें, बिना हमसे हां करवाए, हमरे मुंह में अपने बोल डाल दिए ! कह दिया कि दुनिया से कि हम अपनी जमीन बेचने को तैयार हैं।"[6] अपनी उपजाऊ जमीन को खोने के बाद ये मेहनतकश दर–ब–दर की ठोकरें खाने के लिए मजबूर हो जाते हैं व जीविका का कोई साधन इनके पास नहीं रहता है, तो दूसरी तरफ पूंजीपति वर्ग दिन प्रतिदिन अधिक अमीर व खुशहाल होता जाता है।" जमीन फोड़कर अपना पेट भरने वाले किसानों के पांव के नीचे से जमीन खिसकाने को उतावली सरकार। मेहनतकश तो हुए जा रहे हैं, लाचार, विवश और ये परजीवी शहराती दिन–दिन हो रहे है सुखी, प्रसन्न आकाश तक को हथियाने में समर्थ।"[7] मजबूरीवश अपने गांव व जमीन को त्यागने वाले किसान मानसिक पीड़ा से ग्रस्त होते हैं व इस त्याग की पीड़ा उनके शब्दों में स्पष्ट सुनाई देती है।" कैसा फरेब है ये? कितना बड़ा झूठ है ये? कैसी खुशहाली है ये ? कैसा बांध है ये? नरबली लेगा ये? पशुबली लेगा? धरती माता की बलि लेगा? धोखा है ये! जो हमें लीलेगा वह औरों को भी लीलेगा। वह फिर किसी को खुशहाल नहीं करेगा।"[8] इन पंक्तियों में अभिव्यक्त ग्रामीणों की भावनाएं हृदय को झकझोर कर रख देती हैं। 'डूब' उपन्यास में विस्थापितों की इस पीड़ा को मानवीय संवेदना के साथ जोड़ा गया है। विकास की इस जलपरियोजना का विरोध मानवता के आधार पर किया गया है। न कि राजनीतिक आधार पर। जिन ग्रामीणों की उपजाऊ भूमि इस क्षेत्र में आती है उनके लिए यह बांध योजना विनाशकारी सिद्ध हो जाती है। टीले में दरार आने के कारण क्षेत्र में बाढ़ आ जाती है व बाढ़ के कारण होने वाली जन–धन की हानि ग्रामीणों को सोचने पर विवश कर देती है।" राजघाट बांध के जो टीले उठाए थे न बांध वालों ने उनमें से इस तरफ वाले टीले में रात को दरार पड़ गई। घाट पर छिका तमाम पानी टीला तोड़कर गांव में घुस गया है। पंचमनगर तक जल ही जल है माते ! इतना जल जैसे प्रलय आ गई हो ! जितना कभी किसी बाढ़ के बखत नहीं आया। जाने कितने लोग मर–खप गए ! कितने ढोरु–बछेरू डूब गए ! कितनी खड़ी फसल स्वाहा हो गई!"[9] बांध निर्माण से इस क्षेत्र के लोंगों को इतनी अधिक हानि झेलनी पड़ी। इस प्रकार की विकास परियोजनाओं का लाभ समाज के केवल एक वर्ग को मिलता है, परंतु दुष्परिणाम निर्धन जनता को प्रभावित करते हैं। पीड़ित वर्ग की समस्या यहीं पर समाप्त नहीं होती है बल्कि प्रशासन का सोतेला व्यवहार उनकी पीड़ा को और अधिक बढ़ा देता है। प्रशासनिक अधिकारी साधारण मनुष्य की भावनाओं की अपेक्षा विकास को अधिक महत्व देते हैं, जो कि उनकी आम जनता के प्रति संवेदनहीनता को मुखरित करता है।

जब लोगों की जमीन अधिग्रहित की जानी होती है तब सरकार व प्रशासन द्वारा विस्थापितों को उनके पुनर्वास के लिए आश्वासन भी दिए जाते हैं परंतु वास्तविकता इसके विपरीत होती है। एक बार विस्थापित होने के बाद, ये निसहाय लोग दर दर की ठोकरें खाने के लिए विवश हो जाते हैं और सरकार व प्रशासन की तरफ से इनके पुनर्स्थापन के लिए धरातल पर किसी प्रकार के प्रयास नहीं किए जाते हैं।" जगह के बदले जगह नहीं दे सकी उन्हें सरकार। सरकार ने कह दिया कि फिर से बसने के लिए दो हजार रुपया हम से लो और जहाँ जगह मिले जा बसो। हमारे पास जगह नहीं है तुम्हें बसाने की।"[10] बांध के निर्माण के समय अच्छे जीवन के जीने का सपना संजोने वाले विस्थापित ग्रामीण केवल विस्थापन व पुनर्वास संबंधी समस्याओं को ही नहीं झेलते, बल्कि उनको उनकी उपजाऊ जमीन के बदले उचित मुआवजा भी नहीं दिया जाता है।" घर, बाखर, खेतों में मौजूद कुएं, पेड़ों की तब कोई कीमत नहीं आंकी गई थी। कह दिया गया था कि अभी सरकार के खजाने में रकम नहीं है।"[11] विस्थापित ग्रामीणों के जीवन की यह कटु विडंबना है कि उन्हें केवल जमीन का मुआवजा कम ही नहीं दिया जाता है बल्कि जो कम मुआवजा दिया जाता है उसको लेने के लिए भी उन्हें बहुत प्रयास करने पड़ते है, बार–बार सरकारी दफ्तरों के चक्कर काटने पड़ते हैं। अनेक प्रकार की कानूनी अड़चनों का सामना करना पड़ता है। अनेक अवरोधों को पार करके मुआवजा निश्चित हो भी जाता है, तब भी उन्हें मुआवजे का कुछ हिस्सा घूस के रूप में सरकारी कर्मचारियों को देना पड़ता है।" ढेरों उपाय किए, सैकड़ों दलीलें दीं, तब अंत में ये तय हुआ कि चाहे वह सिंचित भूमि दर्शायी गई हो कागज में या असिंचित, खेतीहर जमीन हो या बंजर, या हो रिहायशी, खेत बचा हो या नदी में समा गया हो, उस पर चारा उगता हो या टपरा खड़ा हो, सब तरह की ज़मीनों का मुआवजा सोलह सौ रुपए प्रति बीघा की दर से मिलेगा। हां, बदले में उन बाबुओं को प्रति बीघा छः सौ रुपया हम अपनी गांठ से देंगे।"[12] उपन्यास की ये पंक्तियाँ विस्थापित ग्रामीणों की विवशता, दुर्दशा व शोषण को प्रकट करने के लिए पर्याप्त हैं।

निष्कर्ष

अत: कहा जा सकता है कि 'डूब' उपन्यास में विकास के नाम पर होने वाले जन–विस्थापन व शोषण का यथार्थ वर्णन बड़े ही प्रभावशाली व मार्मिक ढंग से किया गया है। स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है कि विकास की योजनाएं ग्रामीणों या कमजोर वर्ग के लोगों के लिए विकास के स्थान पर विनाशकारी ही सिद्ध हो रही हैं। भूमि से विस्थापन के साथ–साथ व्यक्ति अपनी पहचान व स्मृतियों से भी विस्थापित हो जाता है। मानव केंद्रित विकास को ही वास्तविक विकास माना जा सकता है। यदि विकास के कारण मनुष्य का अस्तित्व ही नष्ट हो जाए ,वह अपनी जड़ों से ही कट जाए तो वह विकास, विकास नहीं बल्कि विनाश होता है। डूब उपन्यास हमें विकास की इस नई अवधारणा, जिसमें जनकल्याण की अपेक्षा शोषण का भाव अधिक दिखाई देता है, उस पर पुनर्विचार करने के लिए प्रेरित करता है तथा आम व्यक्ति केंद्रित विकास की भावना पर बल देता है।

सन्दर्भ सूची

1. प्रेमचंद, सा हित्य का उद्देश्य, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद–1954, पृष्ठ संख्या–25
2. प्रेमचंद, सा हित्य का उद्देश्य, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ संख्या–26
3. वीरेन्द्र जैन, डूब, एकांत पब्लिकेशन, नई दिल्ली–2014 पृष्ठ संख्या –124
4. वही, पृष्ठ संख्या –195
5. वही, पृष्ठ संख्या –62
6. वही, पृष्ठ संख्या –242
7. वही, पृष्ठ संख्या –207
8. वही, पृष्ठ संख्या –108
9. वही, पृष्ठ संख्या –285
10. वही, पृष्ठ संख्या –218
11. वही, पृष्ठ संख्या –190
12. वही, पृष्ठ संख्या –231